मन्नानीय जी. एस. सिंघवी और निर्मल सिंह के समक्ष जे. जे.

एमईएस नं. 369751 रजनीश कुमार शर्मा-याचिकाकर्ता

भारत संघ और अन्य-उत्तरदाता

C.W.P. No. 16962/C of 2000

12 फरवरी, 2001

प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम, 1985-धारा 19-भारत ***का संविधान, 1950-अनुच्छेद 226-नियुक्ति के लिए*** उम्मीदवारी ***पर विचार न करना-उसे चुनौती देना-आवेदनों को संक्षिप्त रूप से खारिज करना।19(3) न्यायाधिकरण को आवेदनों को संक्षेप में अस्वीकार*** करने ***का अधिकार देता है-प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत-की प्रयोज्यता-एक आवेदन को संक्षेप में खारिज करते समय, न्यायाधिकरण एक वैधानिक दायित्व के अंतर्गत है कि वह ठोस कारणों को दर्ज करे-विवादित आदेश को*** *रद्द* ***करते समय*** *रिट याचिका को* ***अनुमति दी गई।***

यह मानते हुए कि धारा 19 की उप-धारा (3) न्यायाधिकरणों को उप-धारा (1) के तहत दायर आवेदन को संक्षेप में अस्वीकार करने का अधिकार देती है, लेकिन 1985 अधिनियम की योजना और उनमें निहित शक्तियों का व्यापक विस्तार को ध्यान में रखते हुए , न्यायाधिकरण इस शक्ति का बहुत देखभाल और सावधानी के साथ प्रयोग करने के लिए बाध्य हैं और प्रवेश स्तर पर एक आवेदन को खारिज करने के लिए ठोस कारण दर्ज करने होंगे। धारा 19 की उप-धारा (3) के दूसरे भाग में "अपने कारणों को दर्ज करने के बाद" अभिव्यक्ति का उपयोग प्राकृतिक न्याय के नियमों के पहलुओं में से एक यानी बोलने वाले आदेश के वैधानिक अवतार का प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार, 1985 के अधिनियम के तहत दायर आवेदनों पर निर्णय लेते समय, न्यायाधिकरणों का वैधिक कर्तव्य है कि वे तथ्य और कानून के मुद्दों पर विवेक के अनुप्रयोग का खुलासा करते हुए ठोस कारणों को दर्ज करें और ऐसे आवेदनों पर संक्षिप्त रूप से निर्णय तब तक नहीं लिया जा सकता जब तक कि संबंधित न्यायाधिकरण इस दृढ़ निष्कर्ष पर नहीं पहुंच जाता कि आवेदक द्वारा किया गया दावा तुच्छ या परेशान करने वाला है।

(पैरा 9 &15)

डी. आर. शर्मा, *याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता*

गुरप्रीत सिंह, *उत्तरदाताओं के लिए अधिवक्ता*

निर्णय

माननीय न्यायमूर्ति जी. एस. सिंघवी,

(1) 1997 (2) SLP I

(1) प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम, 1985 (संक्षेप में, '1985 अधिनियम') के तहत गठित केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण (संक्षेप में, 'न्यायाधिकरण') क्या अधिनियम की धारा 19 की उप-धारा (1) के तहत दायर आवेदन को ठोस कारण दिए बिना खारिज कर सकता है, यह वह प्रश्न है जो न्यायाधिकरण की चंडीगढ़ पीठ द्वारा 9 जून, 2000 को पारित आदेश परिशिष्ट पी. 2 को रद्द करने के लिए दायर इस याचिका में निर्धारण के लिए उत्पन्न होता है।

(2) उपर्युक्त प्रश्न पर निर्णय लेने के उद्देश्य से, हम तथ्यों पर संक्षेप में ध्यान दे सकते हैं। याचिकाकर्ता 21 मार्च, 1982 को मोटर पंप परिचर के रूप में एम. ई. एस. में सेवा में शामिल हुआ। फरवरी, 1996 में, उन्होंने अधीक्षक, ई एंड एम, ग्रेड-II (जूनियर इंजीनियर के रूप में फिर से नामित) के पद पर *नियुक्ति* के लिए आवेदन किया। वह लिखित परीक्षा और मौखिक परीक्षा में उपस्थित हुए, लेकिन उनका नाम चयन सूची में नहीं आया। फरवरी, 1997 में, उन्होंने पश्चिमी कमान, चंडी मंदिर द्वारा जारी परिपत्र के अनुसरण में जूनियर इंजीनियर के रूप में भर्ती के लिए फिर से आवेदन किया। उनका आवेदन दिल्ली क्षेत्र द्वारा इस आधार पर वापस कर दिया गया था कि वह केवल एक क्षेत्र के लिए आवेदन कर सकते हैं। वह भटिंडा क्षेत्र में चयन के लिए आयोजित लिखित परीक्षा में उपस्थित हुए, लेकिन उसे पास करने में विफल रहे। इसके बाद, उन्होंने 17 मई, 1997 को दिल्ली क्षेत्र के लिए निर्धारित रिक्तियों के खिलाफ नियुक्ति के लिए अपनी उम्मीदवारी पर विचार नहीं करने और भटिंडा क्षेत्र के रिक्तियों के खिलाफ नियुक्ति के लिए अपनी उम्मीदवारी पर अनुचित विचार करने के खिलाफ शिकायत दर्ज की। इसलिए, प्रतिवादीगण को कानूनी नोटिस देने के बाद, उन्होंने 1985 के अधिनियम की धारा 19 के तहत एक आवेदन *दायर* किया, जिसमें प्रतिवादीगण (न्यायाधिकरण के समक्ष गैर-आवेदक) को निर्देश दिया जाए कि वे उन्हें 11 अप्रैल के परिपत्र के अनुसार सरकार द्वारा जारी निर्देशों के अनुसार जूनियर इंजीनियर के रूप में नियुक्त करें । न्यायाधिकरण ने निम्नलिखित आदेश पारित करके याचिकाकर्ता के आवेदन को खारिज कर दिया:

> "आवेदक 10 सितंबर, 1997 को आयोजित परीक्षा में उपस्थित हुआ था और असफल रहा था। इसके बाद वह पिछले वर्ष के दौरान आयोजित परीक्षा का लाभ नहीं ले सकता है।
>
> मामले के इस दृष्टिकोण में, इस ओ. ए. को सीमित रूप से खारिज कर दिया जाता है।"

(3) याचिकाकर्ता ने यह तर्क देते हुए अपने आवेदन की संक्षिप्त अस्वीकृति पर हमला किया है कि न्यायाधिकरण द्वारा पारित तर्कहीन आदेश *1985* के अधिनियम की धारा 19 (3) के अधिकार क्षेत्र से बाहर है। उन्होंने कहा है कि 11 अप्रैल, 1992 के परिपत्र में निहित निर्देशों के अनुसार संबंधित प्राधिकारी पैनल में उनका नाम शामिल करने के लिए बाध्य था और न्यायाधिकरण ने मामले के इस पहलू को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया है और आवेदन पर विचार करने से मनमाने रूप से इनकार कर दिया है।

(4) प्रतिवादीगण की ओर से दायर जवाब दावा में, कनिष्ठ अभियंता के पद पर नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के दावे की अस्वीकृति को इस आधार पर उचित ठहराने का प्रयास किया गया है कि वह 10 सितंबर, 1997 को आयोजित लिखित परीक्षा में उत्तीर्ण होने में विफल रहा था। प्रतिवादीगण ने यह तर्क देते हुए याचिकाकर्ता के आवेदन को संक्षिप्त रूप से खारिज करने का भी बचाव किया है कि न्यायाधिकरण को धारा 19 (1) के तहत दायर आवेदन पर विचार करने से इनकार करने के लिए विस्तृत कारण दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने दावे के साथ कहा है कि *एल. चंद्र कुमार* बनाम *भारत संघ (1) मामले* में उच्चतम न्यायालय के निर्णय को देखते हुए, न्यायाधिकरण को न्यायालय के रूप में नहीं माना जा सकता है और इसके द्वारा पारित आदेश को इस आधार पर निरस्त नहीं किया जा सकता है कि यह सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 2 (9) में परिभाषित निर्णय या डिक्री की आवश्यकता को पूरा नहीं करता है।

(5) श्री डी. आर. शर्मा ने तर्क दिया कि न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश को कानून की त्रुटि से दूषित घोषित किया जाना चाहिए और रद्द कर दिया जाना चाहिए क्योंकि यह पूरी तरह से कारणों से रहित है। विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि प्रवेश स्तर पर एक आवेदन को खारिज करते समय भी, न्यायाधिकरण ठोस कारण बताने के लिए बाध्य है और

(1) 1997 (2) SLP I

इसलिए, याचिकाकर्ता के आवेदन को खारिज करने वाले एक संवादरहित आदेश निरस्त किया जाए और उसे योग्यता के आधार पर निर्णय लेने का निर्देश दिया जाए।

(6) श्री गुरप्रीत सिंह ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि विवादित आदेश बोलने के आदेश की आवश्यकता को पूरा नहीं करता है, लेकिन साथ ही उन्होंने कहा कि उच्च न्यायालय याचिकाकर्ता की याचिका पर विचार नहीं कर सकता है क्योंकि वह 1996 में किए गए चयन के आधार पर जूनियर इंजीनियर के पद पर नियुक्ति का दावा नहीं कर सकता है।

(7) हमने संबंधित तर्कों पर गंभीरता से विचार किया है। संसद के समक्ष प्रस्तुत विधेयक में निहित उद्देश्यों और कारणों के विवरण के अवलोकन से पता चलता है कि सरकार विभिन्न न्यायालयों में कर्मचारियों के सेवा विवादों से जुड़े बड़ी संख्या में मामलों के लंबित होने और उनके निपटारे में देरी को लेकर गंभीर रूप से चिंतित थी। यह महसूस किया गया कि इस तरह के मुकदमे लंबे समय तक लंबित रहने से सरकारी विभागों के कामकाज के साथ-साथ सेवाओं के मनोबल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और इसलिए, एक विशेष मंच, यानी प्रशासनिक न्यायाधिकरणों के निर्माण के लिए एक नया कानून बनाने का निर्णय लिया गया, जो कर्मचारियों के सेवा विवादों से निपटने के लिए विशेष अधिकार क्षेत्र और शक्ति रखते हैं।

(1) 1997 (2) SLP I

यह सोचा गया था कि प्रशासनिक न्यायाधिकरणों की स्थापना से न केवल दीवानी न्यायालयों और उच्च न्यायालयों का बोझ कम होगा और इस तरह उन्हें अन्य मामलों से निपटने के लिए अधिक समय मिलेगा, बल्कि 1985 के अधिनियम के तहत आने वाले व्यक्तियों को उनकी शिकायतों के संबंध में त्वरित राहत भी मिलेगी।

(8) अब हम 1985 के अधिनियम के कुछ प्रावधानों पर ध्यान दे सकते हैं जो इस याचिका में उठाए गए मुद्दे के निर्णय पर असर डालते हैं। धारा 3 (q) सेवा मामलों को परिभाषित करती है। धारा 14 न्यायाधिकरणों की अधिकारिता, शक्तियों और प्राधिकरण से संबंधित है, धारा 19 और 20 में न्यायाधिकरणों की अधिकारिता को लागू करने की प्रक्रिया शामिल है। धारा 21 ने सीमा की अवधि निर्धारित की है। धारा 22 न्यायाधिकरणों की प्रक्रिया और शक्तियों को निर्धारित करती है। धारा 28 में अपवर्जन खंड है और धारा 29 में लंबित मामलों के हस्तांतरण का प्रावधान है।

(9) उपर्युक्त प्रावधानों के विश्लेषण से पता चलता है कि न्यायाधिकरणों को सभी अधिकार क्षेत्र, शक्तियां और अधिकार प्रदान किए गए हैं जो की 1985 के अधिनियम के प्रवर्तन की तारीख से तुरंत पहले सभी न्यायालयों द्वारा भर्ती, पदोन्नति, वेतन, पारिश्रमिक, पेंशन आदि सहित विभिन्न सेवा मामलों के संबंध प्रयोग की जा सकती थी (उच्चतम न्यायालय को छोड़कर और एल. चंद्र कुमार के मामले (ऊपर) में 7 न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय के आधार पर संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय द्वारा)। कारण के संचय की तारीख से एक वर्ष की सीमा निर्धारित करना, न्यायाधिकरणों को अपनी प्रक्रिया तैयार करने की शक्ति प्रदान करना, सर्वोच्च न्यायालय (और अब उच्च न्यायालयों) को छोड़कर अन्य सभी न्यायालयों की अधिकारिता का व्यक्त अपवर्जन करना और लंबित मुकदमों और अन्य कार्यवाहियों को न्यायाधिकरणों को हस्तांतरित करना स्पष्ट रूप से न्यायाधिकरणों के अधिकार क्षेत्र में आने वाले कर्मचारियों के सेवा विवादों के त्वरित निर्णय के लिए विशेष मंच बनाने के संसद के इरादे का संकेत है। न्यायाधिकरणों को प्रदत्त अधिकार क्षेत्र और शक्तियों के व्यापक विस्तार ने उन पर सेवा विवादों को इस तरह से तय करने का एक संबंधित दायित्व लगाया जो कर्मचारियों के साथ-साथ सरकार में भी विश्वास पैदा करेगा। यह तभी संभव है जब न्यायाधिकरण न्यायिक निर्णय के मानकों को लागू करके उनके सामने लाए गए विवादों का फैसला करते हैं जो आवश्यक रूप से एक तर्कपूर्ण आदेश पारित करने को स्वीकार करते हैं। धारा 19 की उप-धारा (3) न्यायाधिकरणों को इसकी उप-धारा (1) के तहत दायर आवेदन को संक्षिप्त रूप से अस्वीकार करने का अधिकार देती है, लेकिन 1985 के अधिनियम की योजना और उनमें निहित शक्तियों के व्यापक विस्तार को ध्यान में रखते हुए, न्यायाधिकरण इस शक्ति का उपयोग बहुत देखभाल और सावधानी के साथ करने के लिए बाध्य हैं और प्रवेश स्तर पर एक आवेदन को खारिज करने के लिए ठोस कारण दर्ज करने होंगे। धारा 19 की उप-धारा (3) के दूसरे भाग में "अपने कारणों को दर्ज करने के बाद" अभिव्यक्ति का उपयोग प्राकृतिक नियमों के पहलुओं में से एक यानी बोलने वाले आदेश के वैधानिक अवतार का प्रतिनिधित्व करता है। 1985 के अधिनियम या नियमों में कारण शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है, लेकिन जिस व्यवस्था और संदर्भ में यह दिखाई देता है, उसमें कोई संदेह नहीं है कि न्यायाधिकरणों द्वारा दर्ज किए जाने के लिए आवश्यक कारण आवेदन के विषय-वस्तु के लिए ठोस और स्पष्ट होने चाहिए।

(10) उपरोक्त के दृश्य में, हमे यह कहने मे कोई संकोच नहीं है कि किसी आवेदन को संक्षिप्त रूप से खारिज करते समय भी न्यायाधिकरण ठोस कारणों को दर्ज करने के लिए एक वैधानिक दायित्व के अंतर्गत है। हमारा यह निष्कर्ष एल. चंद्र कुमार के मामले (ऊपर) में की गई कुछ टिप्पणियों से पूरी तरह से समर्थित है। उस मामले में, सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायमूर्तियों ने 1985 के अधिनियम के प्रावधानों के संदर्भ में भारत के संविधान के अनुच्छेद 323-ए और बी के दायरे और दायरे पर विचार किया और ये निर्धारित किया कि अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालयों में निहित अधिकार क्षेत्र को संसदीय अधिनियम के माध्यम से बाहर नहीं किया जा सकता है। निर्णय के दौरान, माननीय न्यायमूर्तियों ने "मलिमथ समिति रिपोर्ट" के द्वितीय खंड के अध्याय VIII को संदर्भित किया जिसमें 1985 के अधिनियम के तहत गठित न्यायाधिकरण के कामकाज पर प्रतिकूल टिप्पणी की गई है और ये प्रेक्षित किया गया:

> "मलिमथ समिति की रिपोर्ट दिए जाने के बाद के वर्षों में, उच्च न्यायालयों में लंबमनता में काफी वृद्धि हुई है और हमारा मानना है कि इसकी सिफारिश हमारे वर्तमान संदर्भ के अनुकूल नहीं है। यह कि विभिन्न न्यायाधिकरणों ने अपेक्षाओं के अनुरूप प्रदर्शन नहीं किया है, एक स्पष्ट और व्यापक रूप से स्वीकृत सत्य है। हालांकि, यह निष्कर्ष निकालना कि उनका असंतोषजनक प्रदर्शन एक मौलिक रूप से अनुचित सिद्धांत पर उनके आधार की ओर इशारा करता है,

सही नहीं होगा। जिन कारणों से न्यायाधिकरणों को गठित किया गया था, वे अभी भी बने हुए हैं; वास्तव में, वे कारण हमारे समय में और भी अधिक स्पष्ट हो गए हैं। हम पहले ही संकेत दे चुके हैं कि हमारी संवैधानिक योजना ऐसे न्यायाधिकरणों की स्थापना की अनुमति देती है। हालाँकि, उनके मानकों को ऊपर उठाने के लिए कठोर उपायों का सहारा लेना पड़ सकता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे उन्हें प्रदान की गई न्यायिक समीक्षा की शक्ति के निर्वहन में संवैधानिक जांच के लिए खड़े हों।

हम सबसे पहले उच्च न्यायालयों की न्यायिक समीक्षा की शक्ति के बहिष्करण के मुद्दे को संबोधित कर सकते हैं। हम पहले ही यह निर्धारित कर चुके हैं कि न्यायिक समीक्षा की शक्ति के संबंध में,अनुच्छेद 226/227 के अंतर्गत उच्च न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र को पूरी तरह से बाहर नहीं किया जा सकता है। हमारे समक्ष यह तर्क दिया गया है कि न्यायाधिकरणों को उन मामलों पर निर्णय लेने की अनुमति नहीं देनी चाहिए जहां विधायिका की शक्तियों पर सवाल उठाया जाता है, और उन्हें वह मामले संभालने तक ही सीमित रहना चाहिए जब तक संवैधानिक मुद्दे न उठाए जाए। हम इस प्रस्ताव पर सहमत होने के लिए खुद को नहीं ला सकते हैं क्योंकि इसके परिणामस्वरूप कार्यवाही विभाजित हो सकती है और टालने योग्य देरी हो सकती है। यदि इस तरह के विचार को अपनाया जाता है, तो वादियों के लिए संवैधानिक मुद्दों को उठाना खुला होगा, जिनमें से कई काफी तुच्छ हो सकते हैं, जो सीधे उच्च न्यायालयों मे जा सकते हैं और इस प्रकार न्यायाधिकरणों के अधिकार क्षेत्र को नष्ट कर सकते हैं। इसके अलावा, कानून की विशेष शाखाओं में भी, कुछ क्षेत्रों में नियमित रूप से संवैधानिक प्रश्नों पर विचार करना शामिल है; उदाहरण के लिए, सेवा कानून के मामलों में, अधिकांश मामलों में संविधान के अनुच्छेद 14,15 और 16 की व्याख्या शामिल होती है। यह अभिनिर्धारित करना कि न्यायाधिकरणों के पास संवैधानिक मुद्दों से जुड़े मामलों को संभालने की कोई शक्ति नहीं है, उस उद्देश्य को पूरा नहीं करेगा जिसके लिए उनका गठन किया गया था। दूसरी ओर, यह अभिनिर्धारित करना कि ऐसे सभी निर्णय उच्च न्यायालय की एक खंड पीठ के समक्ष संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत उच्च न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र के अधीन होंगे, जिसके क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र के भीतर संबंधित न्यायाधिकरण आता है, दो उद्देश्यों को पूरा करेगा। संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत उच्च न्यायालयों में निहित विधायी कार्रवाई की न्यायिक समीक्षा की शक्ति को बचाते हुए, यह सुनिश्चित करेगा कि न्यायाधिकरण में निर्णय की प्रक्रिया के माध्यम से तुच्छ दावों को छाना जाए। *उच्च न्यायालय को योग्यता के आधार पर तर्कपूर्ण निर्णय का भी लाभ मिलेगा जो अंततः मामले पर निर्णय लेने में उसके लिए उपयोगी होगा।"*

(11) उपरोक्त उद्धृत टिप्पणियों को सावधानीपूर्वक पढ़ने से पता चलता है कि न्यायाधिकरणों को व्यापक शक्तियां प्रदान करने वाले प्रावधानों की संवैधानिकता को बनाए रखने के लिए माननीय न्यायमूर्तियों को प्रेरित करने वाले कारणों में से एक यह था कि वे सेवा विवादों को तय करने में अपनी विशेषज्ञता का उपयोग करेंगे और तर्कपूर्ण आदेश पारित करेंगे जो उच्च न्यायालयों को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रभावी ढंग से प्रयोग करने में सक्षम बनाएगा।

(12) यह प्रश्न कि क्या 1985 के अधिनियम के तहत गठित न्यायाधिकरणों को अपने आदेशों के समर्थन में कारण दर्ज करने चाहिए, दूसरे कोण से विचार करने योग्य है। अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत बहुआयामी हैं और न्यायालयों ने उन्हें न्यायिक, अर्ध-न्यायिक और प्रशासनिक निर्णयों/आदेशों/कार्यों को अमान्य करने के लिए विभिन्न मामलों में लागू किया है। इन सिद्धांतों के पहलुओं में से एक यह है कि प्रत्येक न्यायिक और अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण/निकाय को अपने आदेश के समर्थन में कारण निर्धारित करने चाहिए। ऐसे अधिकारियों/निकायों द्वारा कारणों को दर्ज करने की आवश्यकता को प्राकृतिक न्याय के नियमों के अनुरूप कार्य करने के उनके कर्तव्य का एक अभिन्न अंग माना गया है।

इस नियम का एकमात्र अपवाद यह है कि कानून स्वयं प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की प्रयोज्यता को बाहर करता है या न्यायिक/अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण को अपने निर्णय के समर्थन में कारणों को दर्ज करने और संप्रेषित करने के अपने दायित्व से मुक्त करने के लिए बाध्यकारी कारण हैं। *हरिनगर शुगर* मिल्स *लिमिटेड बनाम श्याम* सुजीदर *(2), भगत* राजा *बनाम भारत संघ* (3), *पंजाब राज्य बनाम* बख्तावर *सिंह (4),* मैसर्स *महाबीर प्रसाद संतोष कुमार बनाम* उत्तर *प्रदेश राज्य (5),* मैसर्स *अजंता इंडस्ट्रीज और अन्य बनाम* केंद्रीय *प्रत्यक्ष कर बोर्ड नई दिल्ली और अन्य (6),* द सीमेंस *इंजीनियरिंग एंड मैन्युफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड बनाम भारत संघ और एक* अन्य *(7), और एस. एन. मुखर्जी* बनाम भारत *संघ (8),* सर्वोच्च *न्यायालय ने बार-बार* अर्ध-न्यायिक अधिकारियों द्वारा बोलने वाले आदेश पारित करने की आवश्यकता पर जोर दिया है। मैसर्स टेस्टील्स लिमिटेड बनाम एम. देसाई सुलह अधिकारी और एक अन्य में इस विषय पर कानून का एक स्पष्ट उच्चारण किया गया है। *(9), उस मामले* में, माननीय न्यायमूर्ति ज. भगवती, (उस समय माननीय

न्यायमूर्ति के रूप में) ने इस विषय पर भारतीय, अमेरिकी, अंग्रेजी और ऑस्ट्रेलियाई न्यायिक रुझानों का एक व्यापक सर्वेक्षण किया और फिर निम्नानुसार अवधारित कियाः—

> "कारण देने की आवश्यकता कानून के शासन से एक आवश्यक परिणाम के रूप में प्रवाहित होती है जो भारतीय संविधान के बुनियादी सिद्धांतों में से एक है। न्यायिक रूप से कार्य करने का कर्तव्य रखने वाले प्रशासनिक अधिकारी इसलिए नीति या समीचीनता के विचारों पर निर्णय नहीं ले सकते हैं। उन्हें केवल विशेष मामले के तथ्यों के आधार पर मामले का फैसला करना चाहिए, केवल उनके सामने मौजूद सामग्री पर और तथ्यात्मक स्थितियों में पहले से मौजूद कानूनी मानदंडों को लागू करके किसी भी बाहरी विचार के अलावा। न्यायिक रूप से कार्य करने के कर्तव्य का पालन सुनिश्चित करने के लिए अब कारण देने की आवश्यकता एक महत्वपूर्ण सुरक्षा है। यह स्पष्टता का परिचय देता है, बाहरी या अप्रासंगिक विचारों पर जांच रखता है और निर्णय लेने की प्रक्रिया में मनमानेपन को बाहर करता है या किसी भी तरह से कम करता है।
>
> एक अन्य कारण जो इस तरह का आदेश देने के लिए मजबूर करता है, वह न्यायिक समीक्षा की शक्ति पर आधारित है जो अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के पास है और

(2) एआईआर 1961 एससी 1169
(3) ए. आई. आर 1967 एस. सी. 1606
(4) ए. आई. आर 1972 एस. सी. 2083
(5) आकाशवाणी 1970 एससी 1302
(6) आकाशवाणी 1976 एससी 437
(7) आकाशवाणी 1976 एससी 1785
(8) ए. आई. आर 1990 एस. सी. 1984
(9) ए. आई. आर 1970 गुजरात I

संविधान का अनुच्छेद 32 के तहत उच्चतम न्यायालय के पास है। इन न्यायालयों के पास उक्त प्रावधानों के तहत एक प्रशासनिक अधिकारी द्वारा दिए गए *अर्ध-न्यायिक* आदेश को प्रमाणित रूप से रद् करने की शक्ति है और समीक्षा की इस शक्ति का प्रभावी ढंग से तभी उपयोग किया जा सकता है जब आदेश एक बोलने वाला आदेश हो। आदेश के समर्थन में किसी भी कारण के अभाव में, उक्त अदालतें समीक्षा के तहत आदेश की शुद्धता की जांच नहीं कर सकती हैं। उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय प्रशासनिक अधिकारी को कानून की सीमाओं के भीतर रखने के लिए हस्तक्षेप करने मे शक्तिहीन होंगे। परिणाम यह होगा कि न्यायिक समीक्षा की शक्ति कम हो जाएगी और नागरिक को कोई निवारण उपलब्ध नहीं होगा, मनमानेपन और मनमानेपन के लिए कपटी प्रोत्साहन होगा। यदि इस आवश्यकता पर जोर दिया जाता है, तो वे न्यायिक जांच और सुधार के अधीन होंगे।''

(13) सीमेंस *इंजीनियरिंग एंड मैन्युफैक्चरिंग कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम भारत संघ(supra), सर्वोच्च* न्यायालय *की तीन न्यायाधीशों की* पीठ ने निम्नलिखित टिप्पणियां करके न्यायाधिकरणों द्वारा कारणों को दर्ज करने की आवश्यकता पर प्रकाश डाला;

''यदि कानून की अदालतों को प्रशासनिक प्राधिकरणों और न्यायाधिकरणों द्वारा प्रतिस्थापित किया जाना है, जैसा कि वास्तव में, कुछ प्रकार के मामलों में, प्रशासनिक कानून के प्रसार के साथ, उन्हें इस तरह से प्रतिस्थापित करना पड़ सकता है। यह आवश्यक है कि प्रशासनिक प्राधिकरणों और न्यायाधिकरणों को अपने आदेशों द्वारा प्रभावित होने वाले व्यक्तियों की निष्पक्ष और उचित सुनवाई करनी चाहिए और ।उनके द्वारा दिए गए आदेशों के समर्थन में पर्याप्त रूप से स्पष्ट एं व्यक्त कारण दें। तभी प्रशासनिक अधिकारी और अर्ध-न्यायिक कार्य करने वाले न्यायाधिकरण निर्णय प्रक्रिया में विश्वास पैदा करके अपने अस्तित्व को सही ठहराने और लोगों के साथ विश्वसनीयता बनाए रखने में सक्षम होंगे। किसी आदेश के समर्थन में कारण दिए जाने की आवश्यकता वाला नियम, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत की तरह है, जिसे प्रत्येक अर्ध-न्यायिक प्रक्रिया को सूचित करना चाहिए और इस नियम का पालन अपनी उचित भावना से किया जाना चाहिए और इसके अनुपालन का केवल ढोंग कानून की आवश्यकता को पूरा नहीं करेगा।''

(14) हाल के एक निर्णय *में पश्चिम बंगाल राज्य बनाम हायर एंड स्लेट ऑडिट अकाउंट सेवा संघ और अन्य (1 (1)),* उच्चतम न्यायालय ने 1985 के तहत गठित न्यायाधिकरण के आदेश को

---

(10) JT 2000 (7) SC 322

केवल रद्द कर दिया कि यह गुप्त और बिना किसी कारण के था। इस संबंध में उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं:

> "आदेश के अवलोकन से पता चलेगा कि न्यायाधिकरण द्वारा मामले में उत्पन्न होने वाले प्रासंगिक तथ्यों या कानून पर शायद ही कोई विचार लागू किया गया हैयह एक बहुत ही गुप्त आदेश है और किसी भी कारण का खुलासा नहीं करता है।"

(15) उपरोक्त चर्चा के आधार पर, हम मानते हैं कि 1985 के अधिनियम के तहत दायर आवेदनों पर निर्णय लेते समय, न्यायाधिकरणों का कानूनी कर्तव्य है कि वे तथ्य और कानून के मुद्दों पर विवेकपूर्ण अनुप्रयोग का खुलासा करते हुए ठोस कारणों को दर्ज करें और ऐसे आवेदनों पर संक्षिप्त रूप से निर्णय तब तक नहीं लिया जा सकता जब तक कि संबंधित न्यायाधिकरण इस दृढ़ निष्कर्ष पर नहीं पहुंच जाता कि आवेदक द्वारा किया गया दावा तुच्छ या परेशान करने वाला है।

(16) ऊपर बताए गए कारणों से, रिट याचिका की अनुमति दी जाती है। विवादित आदेश को न्यायाधिकरण को याचिकाकर्ता द्वारा दायर आवेदन को स्वीकार करने और पक्षों को सुनने के बाद गुण-दोष के आधार पर निर्णय लेने के निर्देश के साथ खारिज कर दिया जाता है।

एस.सी. के.

माननीय न्यायमूर्ति ए. बी. एस. गिल और वी. एस. अग्रवाल के समक्ष , जे. जे.

ब्रिग. सत्य देव (सेवानिवृत्त)-याचिकाकर्ता

बनाम

हरियाणा राज्य और अन्य,-उत्तरदाता

C.W.P. No. 4827 of 2000

20 मार्च, 2001

भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 14,16 & 226—हरियाणा सिविल सेवा (सजा और अपील) नियम, 1987-आर. एल. 4 और 7-विधिवत गठित उच्चाधिकार *प्राप्त चयन समिति की* सिफारिशों *पर एक पूर्व सैनिक की नियुक्ति-नियुक्ति पत्र में पद के उन्मूलन या अन्य कारणों से सेवा की समाप्ति की परिकल्पना की गई है-सेवा से बर्खास्तगी की अब आवश्यकता नहीं है-*पद *मौजूद है-कृपया कि नियुक्ति निरंतर आधार पर होने के बजाय कार्यकाल के आधार पर होनी चाहिए और यह दिशानिर्देशों के अनुसार नहीं थी, मान्य नहीं थी-याचिकाकर्ता के खिलाफ कुछ भी प्रतिकूल नहीं था और उसके कामकाज में कोई कमी नहीं पाई गई-कोई कारणदर्शक नोटिस नहीं दिया गया और सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गयाअनुच्छेद 14 और* 16 *का उल्लंघन-* माप्ति *आदेश को रद्द करते समय रिट याचिका को* अनुमति *दी गई।*

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा।

करन वीर सिंह

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी (Trainee Judicial Officer)

बिलासपुर, यमुनानगर , हरियाणा